एक सूर्य रोटी पर

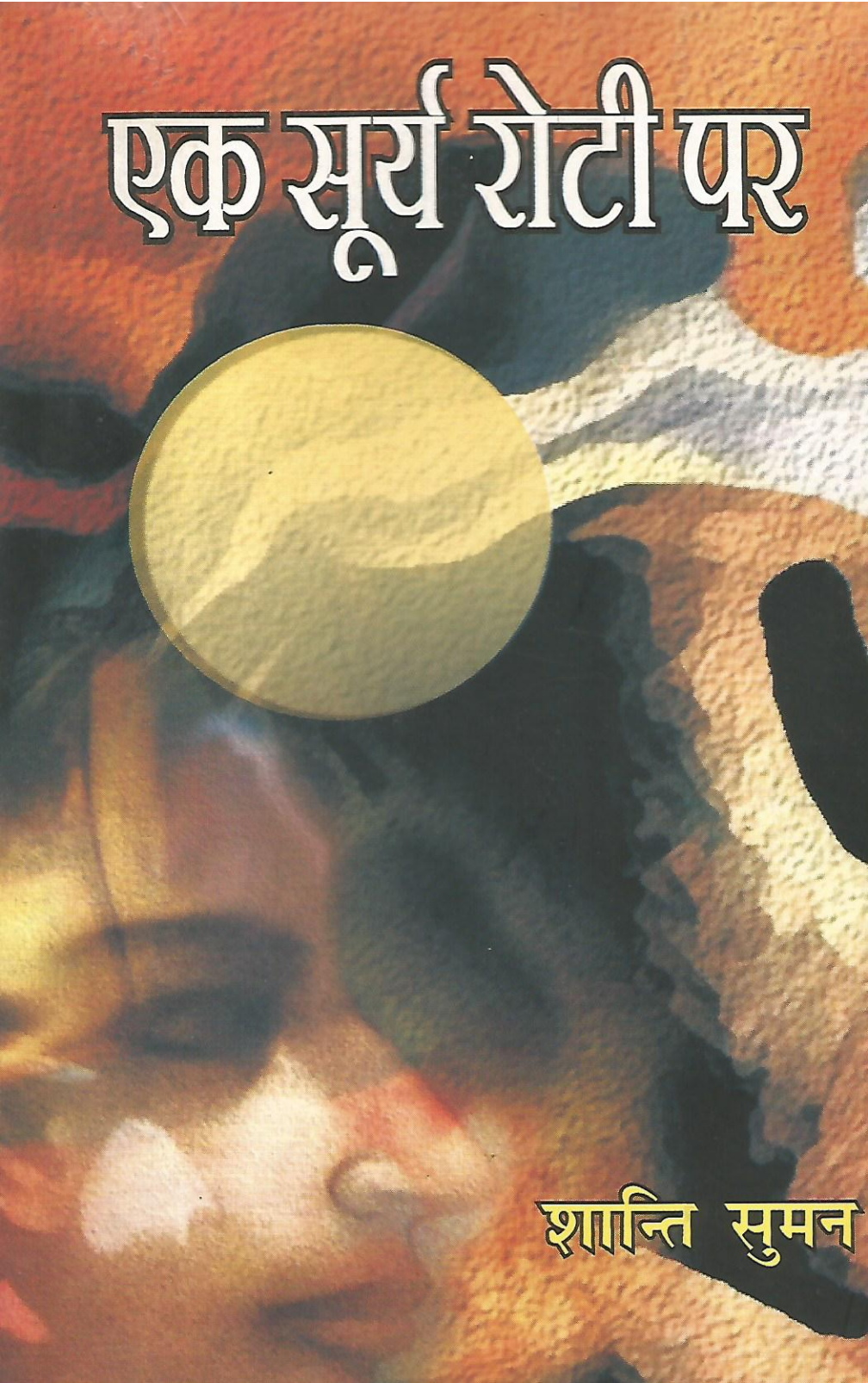

शान्ति सुमन

विकसनशील संवेदनशीलता की गीतकर्त्री हैं शान्ति सुमन । नवगीत के नगरबोध और आधुनिक बोध की यात्रा से गुजरते हुए वे बीसवीं सदी के सातवें दशक के उत्तरार्ध में किसान और मजदूरों के श्रम और संघर्ष को अपने गीतों में ढालने लगीं और जनवादी गीत की संवेदना से एकाकार हो गईं । पूँजीवादी व्यवस्था की प्रत्येक अमानुषिकता को वे छन्द और लय में ढालकर क्रांतिकारी चेतना की वाहिका बन सकी हैं । आरम्भिक जनवादी गीतों के नारेबाजी से शीघ्र ही निकलकर 'एक सूर्य रोटी पर' जैसे श्रेष्ठ कालजयी गीत की रचना वे कर जाती हैं । प्रतिभा की एक पहचान यह है कि वह विकसनशील होती है । युवावस्था के बीतते ही उनका गीतकार फूस की तरह धधक कर जल नहीं गया वरन् जन की संवेदनशीलता से संपृक्त होकर वह और प्रौढ़ तथा पुष्ट होता गया । उनकी गीति-प्रतिभा न छीजने का यही रहस्य है । इन गीतों में घुटन और संत्रास, नगरबोध या आधुनिकता बोध न होकर विपन्नता की पीड़ा तथा व्यवस्था की अमानुषिकता का प्रतिरोध मिलता है । छन्दों में प्रवाह संघर्ष से आया है । इन गीतों में शब्द-विन्यास, लय और जनजीवन-लोकजीवन से संपृक्त होकर समृद्ध हुए हैं ।

गरीबी और अभाव की आग में जलते भारतीय जीवन का दाह है शान्ति सुमन

एक सूर्य रोटी पर

(गीत-संग्रह)

एक सूर्य रोटी पर

शान्ति सुमन

अभिधा प्रकाशन

I.S.B.N : 81-88584-57-6

मूल्य : 100/- रुपये

© : लेखकाधीन

प्रथम संस्करण : 2006

प्रकाशक : अभिधा प्रकाशन, रामदयालु नगर,
मुजफ्फरपुर-842002

दिल्ली सम्पर्क : प्रताप गली, ईस्ट रोहतास नगर, शाहदरा-32

अक्षर संयोजन : मीडिया कॉम कम्प्यूटर ग्रैफिक्स, दिल्ली-32

आवरण : अमिताभ राय

मुद्रक : बी.के. ऑफसेट, दिल्ली-32

EK SURYA ROTI PAR

by

SHANTI SUMAN

गीत में बदलाव के संकेत

गीत विधा चिरन्तन है। आदिकाल से लेकर आज तक यह सतत् प्रवाहित है। कविता छन्दोबद्ध होकर, कभी निर्बंध होकर रची जाती रही। कभी उसके गुम होने का अंदेशा बढ़ा तो कभी उसकी वापसी का हल्ला हुआ, पर गीत प्रकृति की तरह मानव-जीवन के सरोकार में रहा और उसका यही अपनत्व जहाँ उसकी विजय है, वहीं उसके निरन्तर प्रवहमान होने के सबूत भी। अपने दीर्घ जीवन में गीत हरदम समकालीन होता रहा, कभी चुक गया हो ऐसा प्रमाण नहीं मिलता।

गीत के दीर्घायु होने का सबसे बड़ा कारण है उसका समयानुकूल होना। हर समय का अपना एक सच होता है और शायद इसलिये कि गीत समय के साथ चलता रहा है, अपने युगबोध के साथ इसमें परिवर्तन के संकेत समाहित होते रहे हैं। नहीं बदलने की हठधर्मिता यदि गीत में होती तो गीत या तो एकरस हो गया होता अथवा ऊब से भरकर अकाल मृत्यु को प्राप्त हो गया रहता। यह शुभ लक्षण है कि समयानुसार गीत की प्रवृत्ति में बदलाव आया है और प्रत्येक समय के गीत अपनी एक सुनिश्चित पहचान बनाये हुए हैं। सनद रहे कि प्रारम्भ से ही गीत-रचना ने सांस्कृतिक प्रगति-यात्रा में योगदान किया है। हम स्पष्ट देखते हैं कि विद्यापति के भक्ति और शृंगारमूलक गीत, कबीर के वेदान्तपरक गीत, मीरा के शृंगारी वैराग्यजन्य गीत, तुलसी के विनय गीत, सूर के विप्रलम्भ शृंगार से ओतप्रोत गीत से लेकर भारतेन्दुकालीन नवजागरण से सम्बद्ध गीत और द्विवेदी युग के राष्ट्रीय गीत सब प्रवृत्ति की दृष्टि से भिन्न हैं। उनमें एकरसता नहीं है और नहीं आवृत्ति का दोष।

हिन्दी गीत में सबसे बड़ा विभाजक विन्दु है छायावाद। कथ्य और शिल्प दोनों ही दृष्टियों से यह पुनर्गीत का काल था। फिर प्रगतिकालीन

गीत भी बदलाव के सहज स्वीकृत संकेत लेकर आये। आधुनिक हिन्दी गीत काव्य का अद्यतन विकसित रूप है नवगीत। 1958 में राजेन्द्र प्रसाद सिंह के सम्पादन में प्रकाशित 'गीतांगिनी' के गीतों में उसका स्वरूप उभरकर सामने आया। गीत रचना की अनिवार्य परिणति के रूप में नवगीत का आगमन हुआ था, इसलिये अपने पूर्व के गीतों से भिन्न इसके तेवर सामने आये। नवगीत की पुनर्नवता को एकमत से स्वीकार किया गया। छठे दशक के पूर्व से ही गीत में ग्राम्य चेतना और लोक तत्त्वों के प्रयोग होने लगे थे। सातवें दशक में नगरीय द्वन्द्व गीतों में उभरकर आने लगे–

एक चाय की चुस्की एक कहकहा
अपना तो इतना सामान ही रहा

–उमाकांत मालवीय

एक गैस का चूल्हा अबतक नहीं खरीद सका
चढ़ती मँहगाई देती सपनों के पाँव थका
पूरी कभी नहीं पड़ती तनख्वाह महीने की

–नचिकेता

धूप में जब भी जले हैं पाँव
घर की याद आई

– माहेश्वर तिवारी

फूल, पत्ती, जड़, तना है
साँस पर कुहरा घना है
बेंत-वन की घाटियों में
बैठना-उठना मना है
जंगलों में सुख कहाँ अहसान दुखता है

–शांति सुमन

एक बार और जाल फेंक रे मछेरे
जाने किस मछली में बंधन की चाह हो

–बुद्धिनाथ मिश्र

कोई भी विधा कितनी भी प्रिय और जरूरी हो, दीर्घकालीन रचनानुभवों से गुजरते हुए वह कहीं न कहीं अपने यथार्थ को दुहराने लगती है। उसमें धीरे-धीरे मैनरिज्म आने लगता है और एक स्थिति उत्तरकाल में ऐसी आती है जब लगता है गीतकार कोरस लिख रहे हों। नवगीत के साथ अंततः ऐसा ही हुआ। वह मैनरिज्म का शिकार हो गया। एक ही नवगीतकार जैसे अपने भावों और संवेदनाओं को दुहराने लगे। शिल्प इतने सघन हो उठे कि अपनी समृद्धि में भी वे ऊबाऊ होने लगे। यही वह विन्दु था जब सत्तरोत्तर के दशक में जनवादी गीत-रचना प्रारम्भ हुई। किसान-मजदूरों के श्रम-संघर्षों को लिखते हुए गीतकारों ने व्यवस्था के चेहरे को बेनकाब किया। सत्ता के जोर जुल्म और पूँजीवादी अत्याचारों का खुलकर विरोध हुआ। गीतकारों ने सही समय पर सही निर्णय लिया। कुछ उदाहरण देखे जा सकते हैं–

धूप में जब भी जले हैं पाँव सीना तन गया है
और आदमकद हमारा जिस्म लोहा बन गया है

–रमेश रंजक

अंधकार में कैद न होंगे
इन्कलाब के नये उजाले
हाथों की भाषा बोलेंगे
अब फौलादी सीनेवाले
बहुत चली, अब नहीं चलेगी
समझौतों की खींचातानी

–नचिकेता

काटने को जल-सतह पर जमी काई
चीरकर गहराइयों को
हम हवा का साथ देने निकल आईं
हैं सधे तैराक की मजबूत बाँहें,
पसलियाँ हम

–माहेश्वर तिवारी

कदम बढ़ेंगे गिर-गिर के उठेंगे
उठ-उठ के चलेंगे आ साथी
अब न सहेंगे, अब चुप न रहेंगे
सिर तान के चलेंगे आ साथी

—कांति मोहन

अपना तो घर गिरा
दरोगा के घर नये उठे
हाथ और मुँह के रिश्ते में
ऐसे रहे जुटे
सिर से पाँवों की दूरी
अब दिन-दिन होती छोटी
कहती नवकी भौजी मेरे गाँव की

—शान्ति सुमन

इस तरह गीत में जीवन की पीड़ा, त्रास, घुटन, अभाव, शोषण के साथ अमानवीयता के प्रति आक्रोश भी उभरकर आये। आर्थिक विषमता, निर्धनता की पीड़ा, आम आदमी के सरोकार—आठवें दशक से गीतों में व्यवस्था विरोध प्रारंभ हो गया। वहीं से और उसके बाद के दशक में जन सांस्कृतिक चेतना का विकास हुआ। इसके साथ ही मानवीय अस्मिता का प्रतिबिम्ब भी गीतों में खुलकर आया। कहा जा सकता है कि छायावादी, प्रगतिवादी और नई कविता के गीत विभिन्न कालावधियों में लिखे गये, परन्तु नवगीत एक ऐसा गीतकाल है जिसमें ये तीनों प्रवृत्तियाँ समाहित हैं। ऐसा ही है इसलिये नवगीत के कोख से जनबोधी गीत आये और फिर स्वतंत्र रूप से जनवादी गीतों का उदय हुआ। नवगीत तीन-तीन रचना-युगों को अपने साथ लेकर आया था। अपने मूल रूप में नवगीत मध्यवर्गीय भावानुभूतियों का प्रस्तोता रहा, परन्तु सत्तर का दशक आते-आते वह विभिन्न रचनात्मक द्वन्द्वों से घिर गया। अपने समय की परिस्थितियों के दबाब के कारण वह विभिन्न मुद्राएँ धारण करता रहा, पर उसका गीत तत्त्व कहीं बाधित नहीं हुआ। गीत, नवगीत, जनगीत की विभिन्न धाराओं से बहता हुआ गीत पुनर्गीत होता चला आ रहा है।

किसान आन्दोलन, नक्सलवाड़ी आन्दोलन का प्रभाव गीतों में ऐतिहासिक भूमिका रखता है। कविता में जहाँ इतने बदलाव नहीं आये, गीत अपने कोमल मर्म के कारण काल सापेक्ष होता रहा है। प्रगतिकाल के कलाहीन गीतों से मुक्त होता हुआ नवगीत अपने सघन शिल्प के कारण अधिक पहचान बना सका। नवगीत को कलात्मक गीत विधा के रूप में प्रतिष्ठित होने का श्रेय प्राप्त है। श्रेय की इसी उपलब्धि से आतंकित नयी कविता के कितने ही कवियों के सिंहासन हिलने लगे थे और शीघ्रता में उन्होंने गीत का विरोध करना शुरू कर दिया। उन विरोधियों में वैसे भी रचनाकार थे जो कितने ही समृद्ध गीतों के रचयिता भी थे और स्वयं अपनी पहचान मिटा रहे थे, अपना बिम्ब तोड़ रहे थे। अज्ञेय, केदारनाथ सिंह जैसे कितने ही गीतकारों के नाम इस सदर्भ में उल्लेख्य हैं।

नवगीत ने मध्यवर्गीय त्रासदियों को अधिक लिखा। इसके साथ ही इसमें मानवीय सुख-दुख, हर्ष-विषाद, आशा-निराशा के विविध यथार्थ चित्र भी आये। उदाहरणस्वरूप कुछ पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं -

लाख जतन जानकर किये
पाँवों के रुख पलटें कैसे
इतने दिन साथ हम जिये

—राजेन्द्र प्रसाद सिंह

भावलोक गीत में पूरी निष्ठा से व्यक्त हुए। नवगीत और जनवादी गीत दोनों में ही घर-परिवार और आंचलिकता के स्वर मुखरित हुए पर जनवादी गीतों के घर-परिवार संघर्षशील श्रमजीवी जनता के घर-परिवार हैं। इनमें सामंती पूँजीवादी विलास नहीं, दमनकारी व्यवस्था के विरुद्ध आग जलती है। नई कविता की जो दुर्बलतायें थीं, इन गीतकारों ने उनसे बचने की चेष्टा की। नवगीत की यह देन है कि उसमें जीवन जीवन की तरह, प्रेम प्रेम की तरह और संघर्ष संघर्ष की तरह व्यक्त हुए। जनवादी गीतों में श्रमजीवी संघर्षरत जनों के सम्बन्धों को खूब लिखा गया। प्रगतिवादी गीतों की तरह जनवादी गीतों में कलात्मकता का ह्रास नहीं है, अपितु कलात्मकता और अधिक विश्वसनीय रूप में प्रस्तुत हुई है -

पानी काटता है जिस तरह पत्थर
काट दूँगा वह अँधेरा
जो कि बरसों से पड़ा है जहन के भीतर
हर घड़ी, हर दिन, थकन के पार
तेज करता हूँ निरन्तर रोशनी की धार

—रमेश रंजक

धूप निकली, कली चटकी
चल पड़ी हर साँस अँटकी
लगी घर-दीवार पर फिर
चाह की छवियाँ उभरने

—नचिकेता

हम सब बनकर आम अमोला
भरा करेंगे खाली झोला
टँगे रहेंगे आसमान में जब खजूर के बेटे

—माहेश्वर तिवारी

मुड़े हुए नाखून ईख सी गांठदार उंगली
टूटी बेंट जंग से लथपथ खुरपी सी पसली
बलुआही मिट्टी पहने केसर का बाग जला
कथरी ओढ़े तालमखाने चुनती शकुन्तला

—शान्ति सुमन

नवगीत ने दफ्तर की कुर्सियों और दफ्तर की सीढ़ियों की थकन को अधिक देखा था। उसने रोजमर्रे की भाग-दौड़के बीच कहीं एक सुगंध सना रूमाल या कमल की पंखुड़ी को छुपाकर रख लिया था। जनवादी गीत में क्रांति के स्वर अधिक मुखर हुए और विरोध और विद्रोह के बीच व्यवस्था-परिवर्तन की बातें हुईं। दोनों ही प्रकार के गीतों में सकारात्मक तत्त्व अधिक हैं। ये गीत गीतकार को सामान्य जन से जोड़ते हैं। गीत में निहित लय, बिम्ब, शब्द-गठन पाठकों को आत्मीय संस्पर्श देते हैं।

जनवादी गीतों को शैलेन्द्र और पाश आदि के गीतों से अधिक बल मिला। इससे इन गीतो में संघर्षजीवी जनसमूह– किसान, मजदूर तथा निम्न वर्ग की समाजार्थिक और राजनीतिक चेतना व्यक्त हुई है। जनवादी गीतों ने सामाजिक संघर्ष को जन-जीवन से जोड़ा। इन पंक्तियों ने जन-संघर्ष और मुक्ति युद्ध को और तेज किया -

हम लड़ेंगे साथी,
उदास मौसम के लिये
हम लड़ेंगे साथी,
गुलाम इच्छाओं के लिए
हम चुनेंगे साथी,
जिन्दगी के टुकड़े

—पाश

छायावाद ने नवीन शिल्प और नये छंदों से कविता की एकरसता को तोड़ा था, नवगीत ने अकलात्मक गीतों के प्रति अपनी असहमति प्रकट करते हुए नयी रचना-शक्ति का परिचय दिया। जनवादी गीतों ने उससे भी आगे जाकर अंतर्राष्ट्रीय मानवतावाद का परिचय दिया। अपनी धर्मनिरपेक्ष छवि का परिचय देते हुए मनुष्य की विशेषकर शोषित-पीड़ित और दलित जन की मुक्ति के लिये गीतों को हथियार के रूप में प्रयुक्त किया।

गीतों के हर ठहराव और नयी शुरूआत के समय गीतकारों को सोचने की जरूरत महसूस हुई थी। आज भी इस बात को समझने की जरूरत है कि गीत अपने इतिहास को तो नहीं दुहरा रहा है? यह एक कठिन समय है। यह गीतकारों के लिये पुनः आत्मपरीक्षण का समय हो सकता है। पूर्व की अपेक्षा आज शब्द अधिक सक्रिय हुए हैं। इसलिये गीत को अत्याधुनिक रूप में ढालने और सामाजिक सरोकार के लिये गीतकारों का जनपक्ष में आत्म साक्षात्कार जरूरी है। उदारीकरण और विश्व-बाजावाद ने आज नई परिस्थिति उत्पन्न कर दी है। जीवन के हर क्षेत्र में सरलीकरण आया है, यहाँ तक कि भाषा के स्वरूप में भी। जरूरी है कि गीतकार बार-बार अपने अनुभवों में प्रवेश करें।

छायावाद के उत्तरकाल में निराला भक्तिपरक पद लिखने लगे थे, पंत अपने को दुहराने लगे थे और महादेवी रहस्य के अंतर्लोक में लीन होती चली गई थीं। नवगीत के उत्तरकाल में भी ऐसा ही कुछ हुआ। भक्ति और वैराग्य तो नहीं लिखे गये, पर गीतों में सब कुछ को समेट लेने का अधैर्य इतना बढ़ गया कि गीत अपने स्वभाव से ही गिरने लगा था। जनवादी गीतकार इन अन्तर्विरोधों से बचे हैं। वे अपने अनुभवों के अतल में गये हैं और स्वाभाविक सृजन-प्रक्रिया से गुजरे हैं। जनवादी गीतकार की पहचान इसलिये अपने समय, समाज और वर्ग के जरूरी सवालों से जुड़नेवाले जुझारू मित्र के रूप में है। वह अपने संवेदनशील समाज की आँख और हृदय है। वह अपने समाज के यथार्थ के ताप को अनुभव करने वाला जागरूक पहरूआ भी है। ये गीतकार दुनिया में श्रमजीवी संघर्षरत जन के लिये लड़ने की आग जलाये रखते हैं। यहीं से उनके गीतों में प्रामाणिक ऊर्जा आई है। सहज मानवीय करुणा के अभाव को गीतकार आज सामान्य जन की पीड़ा लिखकर पाट रहे हैं। गीतों ने लेखन को निष्करुण होने से बचाया है। राग और प्रीतितत्त्व गीतों में ही बचे हुए हैं। निष्करुण होते हुए समाज को गीतों से ही बचाया जा सकता है।

मैंने एक स्थान पर लिखा था जिसको आज भी लिखना जरूरी लगता है कि "समाज में सक्रिय परिवर्तनकामी शक्तियों के साथ गीतों के जुड़ने की बात जब होती है तो कविता के इतिहास के पिछले पन्ने को भी पलटने की बात सामने आती है। गीतों में प्रगतिवाद का पुनरागमन हो और उसका वही परिणाम भी हो तो यही अच्छा है कि गीत अपनी बुनियादी विरासत से जुड़ा रहकर अपने सामाजिक और सामयिक सरोकारों को अधिक तेज करे और आवश्यक होने पर समय का अतिक्रमण भी कर जाये। जानलेवा व्यवस्था का मर्सिया पढ़ने से कोई फायदा नहीं। इसे बदलने की आकांक्षा रखनेवाली सक्रिय ऐतिहासिक शक्तियों का साथ देना ही उचित है।"[1]

---

1. 'गीत के संदर्भ में' - शान्ति सुमन : "संचेतना" पूर्णांक 157 पृष्ठ 18 वर्ष 32 अंक-3

अतएव आज के हिंसक समय में गीतों में ही सुरक्षित रह सकती है मनुष्यता और इस जटिल समय में जब आदमी को लोहा बना देने की साजिश जारी है, बूढ़े कुछ कहने से कतराते हैं और बच्चे हंसने से, युवा पीढ़ी के सपनों में जंगल उग आये हैं तो गीत ही हैं जो उनके जंगल को हरापन देंगे और उनकी संभावनाओं को भी तलाशेंगे। गीत इन तमाम स्थितियों पर आँखें टिकाये रहेंगे तो निश्चय ही इनमें फिर-फिर बदलाव के संकेत बनते रहेंगे।

पूर्व के गीतों में विशिष्ट अनुभवों को अधिक व्यक्त किया जाता था। जनवादी गीतों में अतिसाधारण अनुभवों तक गीतकार की दृष्टि जाती है। इसलिये जनवादी गीतों में श्रमजीवी वर्ग के दैनंदिन जीवन की पुनर्रचना की गई है। जनवादी गीत के श्रमजीवी, शोषित-दलित वर्ग के आँख-कान, पेट-पीठ और हृदय की गूँज से भरे हुए हैं। अधिकांश जनवादी गीतकारों ने अपनी मध्यवर्गीयता का अतिक्रमण कर मेहनतकश जनता की वास्तविक जीवन-शैली और संघर्षों के अनुरूप अपनी संवेदना और विचारों का गठन किया है। इससे जनवादी संघर्ष को एक नयी जमीन, एक नयी दिशा मिली है। इन गीतों में एक ओर शोषित-दलितों का संघर्ष है तो दूसरी ओर व्यवस्था के प्रतिगामी और विद्रूप चेहरे भी। उनके जीवन-संघर्षों को गीत में ढालने के लिये जनगीतकारों ने क्रांतिकारी अंतर्वस्तु के साथ लोकशिल्प, मुहावरे और धुनों को भी अपनाया है। इसलिये इन गीतों से शक्तिशाली जन-मानस से लैस जनसंगठन भी तैयार हुआ है। मैं मानती हूँ कि जब तक समाज में भूख, गरीबी और शोषण है, जब तक व्यवस्था के कुचक्र में जनता फँसी हुई है, जन-मुक्ति के प्रयास जारी रहेंगे। अपने समय, समाज के जरूरी सवालों से जनवादी गीत जुड़ते रहेंगे। विश्वराष्ट्रीयता श्रमजीवियों को एकजुट करने में सहायक होगी। जनता के द्वारा अपनी बात कहकर जनविरोधी गीत लिखने का अब समय नहीं रहा।

—शान्ति सुमन

अनुक्रम

एक सूर्य रोटी पर / 19
वह लड़की / 20
पेड़ / 21
फिर पलाश-वन दहके / 22
लगने वाली आग / 23
हँसती सुबह / 25
गेरू की लाली / 26
गाती है नदी / 27
पवन और पानी / 28
राजनीति का सलीब / 30
बूँद पसीने की / 32
स्थितियों का गीत / 33
नहीं उतरता मौसम / 35
लपटों भरी आग / 36
हरिजन जैसे दिन / 37
बेरोजगार हम / 39
आँखों में आग / 41
जीने के इरादे / 43
हसिया मचल रहा / 45
शंख बजाकर / 46
अनाज पीसती / 47
खेत के नाम / 48
कंधे पर हल / 49
खिड़कियों में धूप / 51
हँसे चन्द्रमा / 52
चुप्पी का गीत / 53
वक्त का पैगाम / 54
पीठों के कागज / 55
गर्म हवाएँ / 56
हँसी, नींद, सपने / 57
भूख के ककहरे / 58
मिट्टी की भाषा / 59
चिड़ियों की संसद / 61
हमसफर हथेलियाँ / 63
लहू के उठते इशारे / 65
खुशी कल की / 66
ताड़ के पत्ते / 68
भीड़ का बदलाव / 69
टीन की छत / 70
हम मामूली लोग / 71
कसी हुई मुट्ठीवालों की कतारें / 72
महुआ के पेड़ / 73
सर्द पूस में / 74
हवा से सुलह / 75
मिहनतों के पाँव / 76
तनी हुई आँखें / 77
कहो रामजी / 78
फाबड़े की धुन / 79
कहाँ गया बचपन / 80

कामरेड रमेसर की मौत पर / 81
लोहे की जंजीरें / 82
भूख है हथियार / 84
लोहों का गीत / 86
सुबह की आँखें / 87
रोटी पर नमक / 88
खेत हमारे हाथ / 90
हसिया हाथ थमे / 91
मिहनत की गंगा / 92
दिन दशहरे के / 93
सोया राजकुँअर / 94
आग का बीज / 95
निम्नमध्यवर्ग का गीत / 96
एक उदास धूप / 97
खेत बनकर रहे / 99
सुन्दर धरती / 100
चमकी है हसिए की धार / 101
अकाल में बच्चे / 103
मौसम पूस-माघ के / 104
छाँहवाले गाँव / 105
धार की मछलियाँ / 106
खोज आग की / 107
नन्हीं उम्मीदें / 108
अपनी बस्ती में / 109
रथ चढ़े राजा / 110
आस्था का गीत / 111

अपनी अनुपस्थिति में भी जो
उपस्थित हैं, अपने जमाई

स्मृतिशेष

सुशान्त

और

उनकी स्मृतियों से
अपने संघर्षों को माँजकर
रचनात्मक करनेवाली अपनी बेटी

चेतना को

एक सूर्य रोटी पर

यह भी हुआ भला
कथरी ओढ़े तालमखाने
चुनती शकुन्तला

कन्धे तक डूबी
सुजनी की देह गड़े कांटे
कोड़े-से बरसे दिन
जमा करे किस-किस खाते
अँधियारी रतनार प्रतीक्षा
बुनती चन्द्रकला

मुड़े हुए नाखून
ईख-सी गाँठदार उँगली
टूटी बेंट जंग से लथपथ
खुरपी-सी पसली
बलुआही मिट्टी पहने
केसर का बाग जला

बीड़ी धुकती ऊँघ रहीं
पथराई शीशम आँखें
लहठी-सना पसीना
मन में चुभतीं गर्म सलाखें
एक सूर्य रोटी पर औंधा
चाँद नून-सा गला

◇◇

वह लड़की

दिन डूबे, आँखों में सपनों की दुनिया जगती है
वह लड़की पहली बार बया के पंख पकड़ती है

होते साँझ सुरंग
अँधेरों की बनने लगती
आते-जाते पाँवों की
आवाज पहनने लगती

बहनेवाली हवा दुखों के संग सरकती है
अपने सम्बंधों के ताने-बाने बुनती है

मन के भीतर भी होती हैं
मरुथल की जगहें
ईंट पकाती आगोंवाली
धधक रहीं सतहें

कैसी-कैसी स्मृतियों की कीलें गड़ती हैं
चुप्पी में भी बात पहाड़ी झरनों सी झरती है

कोई हँसी, हवा का रेला
याद दिला देता
परिचित सा एक रंग, रंग में
गंध मिला देता

खुशियाँ बीज कहाँ छीटें अब आगे परती है
छोटी एक प्रार्थना लगती बहुत बड़ी धरती है

◇◇

पेड़

इस तरह होते बड़े ये पेड़
नहीं केवल चुप खड़े ये पेड़

टहनियों में दुख रहीं
नोकें सवालों की
बज रही समवेत धुन
कलछी-कुदालों की
हो नहीं पाते हरे ये पेड़
जड़ों से बेहद कड़े ये पेड़

आज तक खाते रहे
जो दुधमुंहे हिस्से
चुभ रहे उनको उन्हीं के
दाँत के किस्से
खुद-ब-खुद उनसे लड़े ये पेड़
भर रहे खाली घड़े ये पेड़

उगी, हाँ अब उगी
किरनें रोटियोंवाली
साँझ दहशत में सनी
होगी नहीं काली

दीखते कितने बड़े ये पेड़
नहीं मरकर भी मरे ये पेड़

◇◇

फिर पलाश-वन दहके

याद तुम्हारी जब भी आये
ऐसे आये
सन्नाटे में दबी चीख नंगी हो जाये

डोल रहा मन तेज हवा में
जैसे दूकानें टिन की
आँखों में आकाश टूटता
सड़कों पर स्याही दिन की
अपने ही घर के आगे गोली चल जाये
कटहल के पत्तों पर बैठी चिड़िया उड़ जाये

जरद किनारीदार पहनकर
साड़ी पूजा-घर में
जैसे कोई माँ असीसती
बेटा कैद शहर में
राइफलों के कुन्दों से ज्यों कुचला जाये
जैसे बागी देशभक्त कोई मर जाये

किसी तिलस्मी-कथा सरीखे
आसंगों में बहके
तब तो ऐसा लगा कि फिर
कोई पलाश-वन दहके

मगर भूख-रोटी में जैसे महायुद्ध घिर आये
ऊंघ रही आंखों पर गर्म सलाखें भिड़ जायें

◇◇

लगनेवाली आग

दाना-पानी नहीं
और भी जीने की सुविधायें
इतना कहने भर से दुनिया
कभी नहीं बदलेगी

साँसें हैं तो हवा भी रहे
सपने हैं तो आँख भी रहे
इन्तजार मौसम का
कब बहती उनचास हवायें
लगनेवाली आग कभी भी
मन का दुख सह लेगी

गाछों पर रहती है चिड़िया
सपनाती है नया घोंसला
नकली लाचारी है
ताड़ पर उमड़ी हुई घटायें
गोबर सनते हाथों की कथा
जुबानी कह लेगी

जीवन की हर साँस अधूरी
माँ को मिलती कम मजदूरी
आँख में सूखे कुएँ
खोजें हसिया दायें-बायें
सिरहाने में रखकर सपने
वह जीवन समझेगी

◇◇

हँसती सुबह

तुम से ही इस घर की शोभा
तुम ही इसका प्यार

पुरइन के पत्तों पर जैसे बूँद
छलक जाये
कुश की नोंकों पर ओसायी धूप
झलक जाये

बिन सँवरा यह रूप तुम्हारा
इस घर का सिंगार

हवा-धूप इस घर की जैसे
हँसती सुबह जगे
पीतल की अंगूठी भी तो
मानिक लाल लगे

चैत चाँदनी गमकी बेला
बाँट रही उपहार

सुख ने बाँट दिये हैं घर में
चंदन और अबीर
मन के कोने-कोने गूँजे
मीरा और कबीर

लिखता है दर्पण अपने मन
का तुमको आभार

◇◇

गेरू की लाली

फूलों का मौसम होठों पर
ओसों का टीका माथे पर
खेतों की माटी में खूब
नहायी लगती हो

गालों पर गेरू की लाली
लाली में खुशबू की जाली
घर में झाँक गयी जैसे-
पुरवाई लगती हो

मन में गमक भरी अगहन की
छँटने लगी उदासी जन की
थोड़ी हुई उदास कि चीज
पराई लगती हो

लहकी दुनिया अहसासों में
बीत गये दिन की बातों में
रामकसम, पहले से अधिक
लजायी लगती हो

◇◇

गाती है नदी

तू गाती है नदी
तो लगता गाता है मौसम

डाल-डाल डोलें अंगारे
सुलगी हुई हवायें
ये जलते बुरूश के जंगल
शिरा-शिरा दहकायें
मौसम की बरखा में भीगी
हुईं मछलियाँ नम

धानों सी फूटी किलकारी
फूलों सी महकी
कमलों की पँखुड़ियाँ खिलती
खुशबू में बहकी

तट पर रूनझुन नूपुर बजते
फसलें गईं भरम
हरी टहनियों सी ये
दसों दिशायें फैली सी
झोपड़ियों की धूप गुनगुनी
कुछ अधमैली सी

प्यार भरी थपकी से तागी
सुजनी हुई गरम

◇◇

पवन और पानी

मौसम की मनमानी—वह तो हद के पार गया
सारे अँखुवों को खेतों में पाला मार गया

दुबक गई चिड़िया
पत्तों की फटी रजाई में
कुहरे की सौगात मिली
इस बार कमाई में

जैसे वर्षा आई सूरज पल्ला झाड़ गया

सुबह-शाम दस्तक देती
रहती है सिरहाने
सब कुछ ठहर गया है
पछिया बात नहीं माने

ऐसी ठण्ड कि इसके आगे दिन यह हार गया

चित्र लिखे से गाछ और घर
साँसें भाप बनीं
इतनी सर्द कि आँखों से ही

सबने बात सुनी

रात-रात भर का सोचा फिर से बेकार गया

हुआ माघ में सावन

रितु की ऐसी आवाजाही

पवन और पानी ने मिलकर

ऐसी बुनी तबाही

पड़ा खाट पर किसना लगता सच को ताड़ गया

◇◇

राजनीति का सलीब

काटेंगे खेत गई फरवरी
बीतेगी कैसे अब यह घड़ी
चलो कहीं जा कीमत बूझें
हँसी और नींद हम खरीदें

चीजों के दाम जंगली
नदियों के शोर हो गये
रोशनियाँ बर्फ हो गयीं
बादल कागज-कोर हो गये
सूखे और बाढ़ में गयीं
नदियों की मछलियाँ खोजें
हँसी और नींद हम खरीदें

कच्चे ताम्बे की ताबीज
टूटे तो भरम खुल गये
पहली ओसौनी के बाद ही
हाथों के रंग धुल गये
पोस्टर पर स्याहियाँ भरीं
कागजी फसल तमाम सूझें
हँसी और नींद हम खरीदें

बचपन होता न अब इस देश में
होश नहीं औ' कंधे झुक गये
थकी-थकी आँखों में टूटते
हौसले अजाने ही दुख गये
राजनीति ने गढ़ी सलीब
टंगी हुई बहस, महज खीझें
हँसी और नींद हम खरीदें

◇◇

बूँद पसीने की

देह साँवली पहने चकमक बूँद पसीने की
परब-तिहारों पर भी
तन पर वही पुरानी साड़ी
जंगल-झरने, पेड़-पहाड़ों
पर लगती है भारी

आधी झुकती डालोंवाली कली नगीने की
साँझों में भीगेंगी आँखें
टपके महुवे कच्चे
बाँहों पर ताबीज लपेटे
हँसी दबाये बच्चे

गोबर-माटी सने हाथ में भाषा जीने की
बिना बात जो कभी न हँसती
कभी नहीं रोती है
आग पेट की वह केवल
आँखों में बोती है

लम्बी-चौड़ी दुनिया की पहचान उसीने की

◇◇

स्थितियों का गीत

धूप जब-जब तेज होती है
पसीने सर के जमीं को ही भिगोते हैं

बाध-वन में सुना जाता
पाखियों का शोर
बहेलिया अब नहीं आता
शर लिये इस ओर
जब हवा के पँख खुलते हैं
काटकर चट्टान हम तब बीज बोते हैं

बंधकों में हँसलियों के
बहुत छूटे रंग
ठूँठ पर लटके हुए थे
वायदों के अंग
अब मगर अहसास होता है
नया पाने कि लिये हम बहुत खोते हैं

सही हमने बर्छियों की धार
अपने सहज सीने पर
काटकर सर ले गये
जो थे कभी रहबर

दाग दामन के सुलगते हैं
चेहरे जब और ज्यादा साफ होते हैं

मार सके नहीं हमें जब
भूख और अकाल
कागजों की खेतियों से
कर गये कंगाल

सूर्यमुख जब शाम होती है
कट गये लम्बे दमन के हाथ होते हैं

◇◇

नहीं उतरता मौसम

चिड़िया की आँखों में नींद नहीं
पेड़ों के पत्तों में भी हलचल कम है
कोई बात छिपी है फूलों के मन में
साँसों में अब नहीं उतरता मौसम है

दुखती हैं टहनी की बाँहें
जड़ से दिनभर बतियाती हैं
हालचाल भी नहीं पूछने-
हवा आजकल घर आती है

आँसू के दाग गाल पर अब भी नम हैं
साँझ उदासी भरने लगती
हरियाये नीम-बबूलों में
पल भर धूप खेल कर आती
पोखर पर जब भी धूलों में
वह हँसी होंठ पर आकर जाती जम है

मंजर से ही झुकी डालियाँ
थीं उस-उस पिछले फागुन में
भरा लिफाफा लिये पड़ोसी
आया था बुहरे आँगन में

अब तो इन बातों से ही होता गम है

◇◇

लपटों भरी आग

यह हवा ऐसी नहीं थी
गंध इससे आ रही बारूद की

कामगारों के घरों का
एक अन्धा आदमी
हो गई नीलाम जिसके
पाँव नीचे सरजमीं
धुआँ पीकर आग यह
लपटों भरी तब से-
आग यह ऐसी नहीं थी
बदल देगी यह कहानी सूद की

चलते रहे अँधेरे में
हम बाँध हाथ हाथों से
पीते रहे पसीने अपने
तने हुये माथों के
सदियों का ऊँचा मकान
अब ढहता है तह से
धूप यह वैसी नहीं थी
दीखती है दूर तक जड़ मंजिले–मकसूद की

◇◇

हरिजन जैसे दिन

इस उजाड़ तक लाकर छोड़ गये
ऐसे तो ये दिन
लौट चलूँ उन मेहराबों में फिर
कभी नहीं मुमकिन

यहाँ हवा है तेज
बदन बेसुध हिलता है
आँख-आँख में फर्क-
नहीं बेशक मिलता है
कुछ चौकन्नापन से जोड़ गये-
घाव बड़े कमसिन

यह कपास-सी सुबह
रात खादी कुरते-सी
कटी फसल की महक
लगे अनलिखे पते-सी
चांदी की हंसुली यों तोड़ गये
हरिजन जैसे दिन

रेहन खेत लगे जैसे
बिक गये पसीने भी

पर न खिंचे हुए तेवर
बिक सकते जीते जी
रद्दी कागज-से भले मरोड़ गये
ताने दे गिन-गिन
लौट चलूँ उन महराबों में फिर
कभी नहीं मुमकिन

◇◇

बेरोजगार हम

पिता किसान, अनपढ़ माँ
बेरोजगार हैं हम
जाने राम कहाँ से होगी
घर की चिन्ता कम
आँगन की तुलसी सी बढ़ती
घर में बहन कुमारी
आसमान में चिड़िया सी
उड़ती इच्छा सुकुमारी
छोटा भाई दिल्ली जाने का भरता है दम

पटवन के पैसे होते
तो बिकती नहीं जमीन
और तकाजे मुखिया के
ले जाते सुख को छीन
पतले होते मेड़ों पर आँखें जाती हैं थम

जहाँ-तहाँ फटने को है
साड़ी पिछली होली की
झुकी हुई आँखें लगतीं
अब करूणा की बोली सी
समय-साल खराब टँगे रहते बनकर परचम

जब से सूखी नदी सूखते
ताल सुरीले जल के
कच्चे घर की द्वारों पर
छपते सपने कल के
इनके कभी, कभी उनके होकर भी आँखें नम

आँखों में आग

तुमने धरती पर हल से
अपना अधिकार लिखा
ओ रे फौलादी तुमने
अपना घर-बार लिखा

खेतों की मेड़ों का आज
दिखा तो सही दहकना
मिहनत से धरती पर गिरता
चंदन हुआ पसीना
उजले दिन की आहट ले यह भी
सौ बार लिखा

चिड़ियों के डैनों से
खुलते आये दिन उजले
फिर कोई जल-गीत लगे
नभ से उतरे हौले
बिछा हुआ कालीन फसल का ही
हर बार दिखा

अलमुनियम के तसलों में
पकते भातों सा उबले
खान-खदानों खलिहानों में
किरणें मिलीं गले
जंगल के भी पेड़ों को
अपना गुलजार दिखा

◇◇

जीने के इरादे

दीवारों पर नारे लिखती हुई उँगलियाँ
आज गयीं हड़ताल पर

नीड़ों में दुबकी है चिड़िया
आग बचा अपनी आँखों में
आँधी आने के पहले ही
पैनी धार बना पाँखों में
कड़की की कमाई सारी
अब तो लिए मछलियाँ
जुटी हुई हैं ताल पर

गरमा रही हवायें फिर से
जीने के बढ़े इरादे
आती हुई आँधियाँ ठहरीं
झूठे सब कसमे-वादे
हाथ को हल पर धरे
तड़कती हुई पसलियाँ
रोटियों के सवाल पर

लौटेंगी बच्चों की खुशियाँ
तो जीवित होंगे सपने
रोजी-रोटी की खातिर अब
अलग न होंगे अपने
खबरें फैला रहीं यहाँ
फूलों की लाल पाखुड़ियाँ
नये मौसम के हाल पर

◇◇

हसिया मचल रहा

फसल काटने के दिन आये
परब जगे

हसिया मचल रहा हाथों में
झूमे बाली कानों की
जलती सिंदूरी मशाल
होंठों पर धुन गाने की
पिछले दुख रह-रह गहराये
कठिन लगे

गोबर लिपे हुए आँगन में
पूज देव-पितरों को
घर से निकलीं खिल-खिल हँसियाँ
रख 'कनिया-पुतरों' को
जी-तोड़ कमाई कर आये
सुखद लगे

कब से पेड़-पखेरू करते
हैं मुठभेड़ हवा से
सीख रहे हैं बच्चे हँसना
अब तो राम दया से
उजियारे आँखों में छाये
मेल सगे

◇◇

शंख बजाकर

शंख बजाकर बरसे बादल
खेती लहरी है

अँकुरे रेह-रेह में बीहन
मन में खेत टँके
दुख कोई भी नहीं कि
पहले हँसुली-बाँक बिके
सुनती नहीं हवा कछेर की
सचमुच बहरी है

चाह रही सुख को मुट्ठी में
बंद करे गाये
दुख के साये दूर-दूर से
आकर नहीं डराये
पोखर के जल नहीं बनेगी
आशा दुहरी है

खेत बटाई के देते हैं
नहीं रात भर सोने
सपने में सपने आते हैं
घर-विवाह-गौने
पाँव रंगे हैं लाल रंग में
खुशियाँ ठहरी हैं

◇◇

अनाज पीसती

जाँतों पर अनाज पीसती
कंठों के सुर से
लगता जैसे कितने सावन
अनबरसे बरसे

मिट्टी का कोई गोला
पानी के डबरे में
जैसे धीरे गले
डूबता जाये लहरें ले
चिड़ियों को हौले पुकारती
उड़ने के डर से

टुकड़े चौकोर धूप के
घर में पड़ते ही
चांदी का बिछिया बजने
लगता है पहले ही
वैसे कितना पानी चढ़कर
उतरा है सिर से

चारों ओर अँधेरा बूढ़ी
लालटेन है जलती
पुलिस न जाने क्यों आयी थी
मन में पीड़ा पलती
गीतों ने कह दिया हवा यह
बदलेगी फिर से

◇◇

खेत के नाम

बोये हुए बीज खेत में
रचते हैं रंगोली
अँकुरायेंगे तब सखियों की
होगी हँसी-ठिठोली

अपनी इच्छा, अपने सुख-दुख
और सभी डर अपने
नाम खेत के लिखकर हमने
बचा लिये कुछ सपने
इस बचाव में अनसुनी हो गयी
उनकी कड़की बोली

माँ की रोटी, नमक बहन का
और हँसी घरवाली
हलकू ने तो देखा केवल
रात पूसवाली
घीसू, माधो बिरहा गाते
साथ चल रही टोली

दुख सहकर ही हमने दर्द
भुलाया है दुख का
बचा हुआ है आँखों में
अभियान गीत सुख का
बहुत दिनों के बाद हवाओं
ने आँखें खोलीं।

◇◇

कंधे पर हल

श्रम से चूर हुआ तन
कैसा सोना है लगता
मिट्टी का हर कोना
कितना अपना है लगता

आई अभी काटकर फसल
बुहार रही है घर
बच्चों की आँखों में उड़ते
हैं रोटी के पर
दुपहर में घर में होना
अनहोना है लगता
खेतों के मेड़ों का गीत
सुहाना है लगता

दुख को कितनी दूर भगा दे
खिला हुआ मुखड़ा
खूँटे पर का बैल गवाही
देता हुआ खड़ा
बिना तुम्हारे यह जग भी
अनजाना है लगता
आँखों से सपनों का
आना-जाना है लगता

घर में रहे खेत की चिन्ता
खेत रहे तो घर की
मुखिया की बेमानी बातें
उसकी खुसर-फुसर की
अपना तो हर दुख जाना
पहचाना है लगता
कंधे पर हल हो तो
पत्थर दाना है लगता

◇◇

खिड़कियों में धूप

हाट है तो बिकेंगे कुछ शब्द
नहीं फिर भी कटेंगे कुछ शब्द

फूल हों या पत्तियों के घर
साथ उड़ते पखेरू के पर
तोड़ चुप्पी रहेंगे कुछ शब्द
दमन के सिर पर चढ़ेंगे शब्द

नदी सूखी प्यास के पहले
बाज के हाथों पड़े मसले
नहीं असमय मरेंगे कुछ शब्द
सृजन को सुर में गढ़ेंगे शब्द

सामने है हवा कितनी तेज
दीखती जैसे कठिन अंगरेज
हँसी बच्चों की हँसेंगे शब्द
नहीं जालों में फँसेंगे शब्द

खिड़कियों में धूप गमकेगी
आग चूल्हे की गरम होगी
नरम टहनी से हिलेंगे शब्द
चाक पर श्रम के मढ़ेंगे शब्द

◇◇

हँसे चन्द्रमा

घर से बाहर, बाहर से घर करती है मुनिया

अभी हाट से लौटा
लकदक होकर सोनेलाल
गैंची-कतला के संग लाया
साड़ी टह-टह लाल

सेनुर में ही बँधी हुई लगती पूरी दुनिया

पाखी जैसे पले नीड़ में
वैसी ही पली हुई
आँखों की पुतरी जैसे
मिसरी की डली हुई

घुंघरू जैसी देहरी पर बजती रहती बिनिया

सात किलो राई-सरसों
और आठ किलो सुतली
चमकी कच्ची चाँदी की
बिछिया - टीका - हँसुली

ऊपर हँसे चन्द्रमा नीचे लहरी है नदिया

धूप - हवा साँसों के किस्से
आँखों अड़हुल - बाग
दुख को बना कपूर जगाते
आठों पहर विहाग

रूई जैसे धुने हुए सुख हाथ हुआ धुनिया

◇◇

चुप्पी का गीत

हवा चुप है, नदी चुप है, बाग चुप है
पर क्या सच है कि जलती आग चुप है

राह पर पत्थर बिछाकर
सो गये जो
रुख हवा का मोड़कर भी
खो गये जो
सिर्फ खुलता मुँह जनमता राग चुप है

ढह रही बेबस छतों पर
सूखते लत्ते
नयी किताबों को मिले
कुछ पुराने गत्ते
महासागर का धुना यह झाग चुप है

नहीं सुविधा काढ़ते वे
खड़े औंधे
रच रहे हैं स्वाद के
मीठे घरौंदे

रंग कम, पानी अधिक, यह फाग चुप है
पर क्या सच है कि जलती आग चुप है

◇◇

वक्त का पैगाम

पसीने फूले
अलग थे, अब साथ चलकर
पथ चुनें पहले

गाँव से थे शहर तक
ये आग के झोंके
बेघरों के पाँव तक
उठते गये फोके
महल की दीवार से लग
सो गये झूले

धानबाली-सी खिलेंगी
कामगंर की तेज आँखें
झाड़कर उठते दिखेंगे
हाथ जैसे जुड़ी पाँखें
और बढ़ आगे नये नित
हौसले छू लें

आंधियों के पाँव चलकर
आ गया मौसम
धूल-माटी में खिलेगा
रक्त का परचम
वक्त ये पैगाम लाया है कि
हम कीमत वसूलें।

◇◇

पीठों के कागज

हमें न समझो कादो कीचड़
कचरे नाली के
पाँच साल पर कटे अंगूठे
हम बदहाली के

सुनकर रथ के नाद तुम्हारे
दौड़ लगाते हैं
पीठों को कागज कर
तेरे हाथ थमाते हैं
जलते खून हमारे - तेरे
दिये दीवाली के

तीन सेर मड़ुवे पर दिनभर
खटकर आई माँ
गाँवों के सीवान लाँघ
संसद में हुए जमा
दोनों हाथ जरूरी हैं अब
बजती ताली के

तेरी खिड़की पर चाँद
हमारे सिर पर सूरज उगता

कजरी, सोहर, झूमर गाते
आँखों का दुख कमता

आँचल में हम फूल-गीत
इंगुर की लाली के

◇◇

गर्म हवाएँ

डोल रहे अपनी मर्जी से
घोंसले हवा में
जैसी दर्जी की मशीन पर
सिलते पाजामे

यहाँ-वहाँ उड़ रहे रेत के
भभके हुये बगूले
गर्म हवाएँ घर-बाहर की
झूल रहीं झूले
सभी मोड़ हिलते हाथों में
एक जुलूस थामे

खुली हुई बहसें हैं—
उस पूरी तैयारी की
नाली पास पड़ी है कोई
लाश भिखारी की
बरसों से बहते हुए पसीने
को बंजर तामे

चुभती नहीं बड़ी नोंकोंवाली
अब आलपिनें
तेज उमस में सटे बदन से
झिलमिल टेरिलिनें
कीचड़ खाने लगे कमल को
बजने लगे दमामे

◇◇

हँसी, नींद, सपने

दिन पर घिरते जाते ये मटमैले साये हैं
दिल्ली से लौटे हैं, अपने बीच पराये हैं

टेढ़ी नजरों से देखा
करती थी अपनी बहना
माँ भी कहती बौआ मेरा
नहीं मानता कहना

बाबू गिरने लगते जैसे घर के पाये हैं

मिहनत और मजूरी करके
दिन कट जाते थे
दूर-दूर रहने के ये
घाटे पट जाते थे

अब तो आँखों में पानी के दिये जलाये हैं

एक-एक कर बनती जाती
कितनी कुतुबमीनारें
हाथ जहाँ तक पहुँच नहीं
पाते वैसी दीवारें

हँसी, नींद, सपने सब कुछ कितने घबड़ाये हैं

◇◇

भूख के ककहरे

जनम से ही पढ़ रहे हम
भूख के ककहरे

एक मीठी हँसी पर
सँझवातियां माँ की
जागती दादी दुहरती
धुन पराती की
याद आते नहीं मौसम
होलियाँ - दशहरे

सिर्फ छपते कलेन्डर
दिन-माह क्या होते
और सब होते मगर
ये दुख नहीं होते
पिघलकर नदियाँ गईं जम
सब हुए बहरे

नाम सुनकर रोटियों का
कतारें बनतीं
पाँव भर फैली थकानें
सीढ़ियाँ चढ़तीं

अब इशारे भी नहीं कम
तोड़ते पहरे

◇◇

मिट्टी की भाषा

अँखुवों में है रूप ले रही
जो मिट्टी की भाषा

ऋतु आने पर उसका आखर-आखर पढ़ना
हरियाली में उभर रहे उपमानों के माने
फूलों में आकार लिये रूपक के नये घराने
रेहों में है पनप रही
जो मीठे फल की आशा

उस आशा को आँक रही कोई कविता लिखना
सूरज की किरणों से है धरती अब लगी सँवरने
चन्दा बाँटेगा सबको भर-भर दोने सपने
आँखों में जो है दहक रही
वह आग फेंकती पासा

उसकी चिनगारी के कण को सदा जुगाये रहना
सुख से भरी हुई यह धरती गाती कोमल गाने

जीवन-रस से भरी हुई हैं इसकी सुन्दर ताने
बात-बात में बरस रही
जो कह दो कभी जरा सा
मन को छूनेवाली बातें कभी नहीं कहना

◇◇

चिड़ियों की संसद

केवल दाना नहीं, नीड़ भी बहुत जरूरी है
फिर से यही फैसला है
चिड़ियों की संसद में

कमने लगीं हवायें–
अब आकाश हुआ छोटा
दौड़ती हुई मिसाइलों का है
बँधा हुआ कोटा

फिर भी अँजुरी भर प्यार बाँटना बहुत जरूरी है
कोंपल सा उगा हौसला है
अपने बढ़ते कद में

बाध-बधार खेत सब जैसे
सहमी आँख लिये
पेड़ों के पत्तों की हरियाली
की पाँख सिये

कुम्हलाये स्वर में धार जगाना बहुत जरूरी है
कुछ बेतरतीब सिलसिला है
रचते मीठे पद में

चिड़ियों की संसद

केवल दाना नहीं, नीड़ भी बहुत जरूरी है
फिर से यही फैसला है
चिड़ियों की संसद में

कमने लगीं हवायें–
अब आकाश हुआ छोटा
दौड़ती हुई मिसाइलों का है
बँधा हुआ कोटा

फिर भी अँजुरी भर प्यार बाँटना बहुत जरूरी है
कोंपल सा उगा हौसला है
अपने बढ़ते कद में

बाध-बधार खेत सब जैसे
सहमी आँख लिये
पेड़ों के पत्तों की हरियाली
की पाँख सिये

कुम्हलाये स्वर में धार जगाना बहुत जरूरी है
कुछ बेतरतीब सिलसिला है
रचते मीठे पद में

गूँजे श्रम के गीत उठे
फिर बिरहा की तानें
मौसम की धड़कन में जागे
सोये सुख पहिचाने

मुस्कानों की थाप थिरकना बहुत जरूरी है
अँधियारों का ढहा किला है
सोया था जो मद में

◇◇

हमसफर हथेलियाँ

निबह तो सकता नहीं अब साथ उनके
इन अँधेरी काइयों पर
और मत फिसलें

पाँव की ये बेड़ियाँ जितनी निकम्मी
हमसफर हथेलियों को
और भी कस लें

वहाँ भी दीखें जहाँ हम
थे नहीं शामिल
और जितना ही सहे-
होते गये बुजदिल
बात उल्टी इस अँधेरी कोठरी की
पत्थरों पर उगाती हैं
इन दिनों फसलें

तने हाथों में ध्वजों की
आकृतियाँ पहने
रोम-रोम जले, आँखों—
आग के गहने

टूट जाता पर बदल पाता नहीं
एक टुकड़ा चेहरा पर
लाख वे हँस लें
हमसफर हथेलियों को
और भी कस लें

◇◇

लहू के उठते इशारे

चुप नदी की धार हो जाये
या कभी तलवार सो जाये
रोशनी पर चुप नहीं रहती

वह तुम्हारा तोड़ परती
अँकुरित होना
साँस भर उठती हवा का
स्फुरित होना
तेज तपते लहू के उठते इशारे
पसीने की कोख मे जलते सितारे
धूप यह ऐसे नहीं मरती

शोषणों के बीच बँटते
देह के टुकड़े
रख नहीं पाती गुलामी
लौह के पहरे
हम दिशाओं में उगे संकेत-से
लाल दिखते मेड़ वाले खेत-से
मृत्यु भी अमरत्व-सी लगती

◇◇

अच्छी लगने लगी अभी से
आशा नयी फसल की
खाली आँखों में सजती है
खुशी सुनहरे कल की
फूलों की खशुबू को फिर
वनवास नहीं होता

◇◇

ताड़ के पत्ते

ताड़ के पत्ते बड़े नुकीले हैं
तेवरों में रंग लाल-पीले हैं

धूप के पांवों फटी बिवाइयाँ
हवा तलाशती हुई दवाइयाँ
रोशनी के कान बहुत ढीलें हैं

पालतू कबूतरों की नुमाइशें
जंग में तब्दील होती कोशिशें
घर कहाँ, हम सब यहाँ कबीले हैं

जली हुई आँख में सौ तीलियाँ
उड़ रही हैं तिलस्मों की चिन्दियाँ
हाथ में मशाल लिये टीले हैं

◇◇

भीड़ का बदलाव

चाहे रहो गाँव में भाई
चाहे रहो शहर में
चुप होकर अब नहीं बैठना
अपने टूटे घर में

धूल-धूल ये शहर हुए
मिट्टी-मिट्टी से गाँव
छन्द जोड़ती पाँखें सोनल
टूट गईं इस ठाँव
नाचघरों में बोयी जाती
पूँजी मिला जहर में

इधर भूख-बीमारी हरदम
बुनती रहती जाले
बेवश अधनंगे बच्चे
खायें पेड़ों की छालें
उनकी हँसी बरफ सी जैसे
उठती नहीं नजर में

चेहरा ही न बदलता
और बदल जाता सिंहासन
चौराहें पर बँधी तख्तियाँ
सिखा रही अनुशासन
हम बदलाव करेंगे इन
भीड़ों का एक सफर में

◇◇

टीन की छत

काँपती सी है खड़ी ऐसे
टीन की छत रो पड़ी जैसे

देखती है हथकड़ी अपनी
स्वप्न-वेधी आँख
बन्द उसमें उड़ानों के
लिये आकुल पाँख

भिंची मुट्ठी जड़ पड़ी ऐसे
टीन की छत रो पड़ी जैसे

छीनकर वे ले गये
वर्षा, नदी के गीत
आँख में कुछ रेत उड़ती
शंख-सीपी-शीत

धूल झोंकों में उड़ी ऐसे
टीन की छत रो पड़ी जैसे

हम तुम्हारे लिये काटेंगे
खुशी की धार
शब्द अपने हमारे होंगे
सही हथियार

उबलती धमनी अड़ी ऐसे
टीन की छत रो पड़ी जैसे

◇◇

हम मामूली लोग

अँजुरी में पानी है, पानी में परछाईं
चूते घर को देख-देख आँखें भर आईं

बहुत देर तक भींगे थे अँजुरी के पुल
कितना तरसाया तब बरसा था बादल
खोंपा गुँथे कनेर शाम तक ताजे थे
हँसी-हँसी में बजते थका नहीं मादल
छोटे-छोटे सपनों की करते अगुआई
साँसों में जगी नींदोवाली रात बिताई

कभी पकड़ने इन्द्रधनुष खपरैलों पर
घंटों बैठे रहे जैसे सिंहासन पर
हम मामूली लोग नहीं रह जाते थे
दावा अपना धूप-हवा के शासन पर
आगे होता था मौसम पीछे पुरवाई
मिट्टी-पानी के संग अपनी साख बढ़ाई

कभी अभावों में रहकर भी गाता मन
तिनका भी सहेजकर रख लेते थे हम
नावों को तो रहना है मँझधारों में
कभी न तट पर बँधे हुए रहते थे हम
तुमसे रहना दूर बात यह कभी न भाई
धार महानन्दा की जब से घर में आई

◇◇

कसी हुई मुट्ठीवालों की कतारें

धीरे बहो पसीना
अब तो बाकी बहुत उमस है
कसे हुए तेवर पर कूब से
अपना ही तो वश है

भूखों की ओ ना मा सी से
शुरु हुआ जो मौसम
एक चीख में बदल गया
जो था पूरा गुमसुम
उँगली की भाषा पढ़कर
वह जीता लाख बरस है

दूबों से हम उगे हुए
खेतों की कड़ी सतह से
बहा-बहाकर खून-पसीना
जीते कई तरह से
अब तैयार हुई हैं बाँहें
छोटा हुआ कफस है

कसी हुई मट्ठीवालों की
लम्बी आज कतारें
काले शोषण के खिलाफ
आँखों में आग उतारें
जोर-जुल्म पर जीनेवाले
दिखते तहस-नहस हैं

◇◇

महुआ के पेड़

चम्पा के पेड़ नहीं बाबा
महुआ के पेड़ उगाना

खाली हथेली औ' खाली चंगेरियाँ
चुभती हैं बहुत इन दिनों
माँ का सूना ललाट कहता है बार-बार
पसीने की बूँद मत गिनो
जंगली सूअर ना आये
ऊँचा मचान एक बनाना

हाथों से होते हुए पेटों तक
बुना हुआ एक मकड़जाला
तोड़ेंगे, क्या छोड़ेंगे ऐसे ही
बन्द पड़ा कब का यह ताला
कामगर बस्ती में खलता है
चौबारा खड़ा पुराना

टहनियों भर पेड़ तले झंडा एक गाड़ेंगे
तोड़ेंगे अड़हुल के फूल
महुआ की छाँहों में कीर्त्तन की धुन पर
मिहनत को करेंगे कबूल
कहती है भूख-प्यास अपनी
मौसम के जंग छुड़ाना

◇◇

सर्द पूस में

बहुत दिनों के बाद
आँख में उतरी पुरवाई

दिन डूबे थे सन्नाटे में
गेहूँ बिका बहुत घाटे में
सरसों की आशा थी बाकी
वह भी जहाँ-जहाँ बाँटे में
महज हँसी के साथ,
धूप थोड़ी मुड़ आई

लगभग संग हुई कुछ बातें
नमक और चीनी दिन-रातें
सुजनी, गाँती, ढेर अंगोछे
सर्द पूस हम-मिल जुल काटें
फसलों वाले प्यार,
फाड़ देते मन की काई

कोड़े हुए खेत में कलके
बीज लगाये खड़ी फसल के
छोटी मड़ई की आँखों से
खुशियाँ झरतीं छलक-छलक के
केवल मीठे बोल,
कि मैली धोती उजलाई

◇◇

हवा से सुलह

खाली ताख निहार
आज की सुबह हुई

उनके घर में मचे हुए हैं धूम पटाखे
अपने घर की चिड़िया नोंच रही है पाँखें

गिरने को दीवार
हवा से सुलह हुई

रोशनियों की बौछारें दिन-रात महल में
अपनी तो जिन्दगी कटी जा रही टहल में

पानी में सेंवार
भूख की वजह हुई

गाँव-गाँव से जुड़ने को हैं सही तकाजे
चाहे उनके बन्द रहे खिड़की-दरवाजे

छिपते हैं लाचार
जंग इस तरह हुई

◇◇

मिहनतों के पाँव

फसल की फुनगी हिली
नाचे खुशी से मेड़
आँखें जागती हैं

सूप भर दाने लिये
माँ खड़ी ओसारे
मिहनतों के पाँव घुंघरू
बाले झनकारे

महाजन का मन गिरा
जैसे गिरे हों पेड़
धारा भागती है

अब किसी दिन ये
जला देंगे बही-खाते
नाम पुरखे आज तक
जिनके रहे गाते

शिशिर का मौसम गया
होगी नहीं अब देर
खुशबू बाँधती है।

◇◇

तनी हुई आँखें

अँखुआये मन में खेतों के सौ सपने हैं
जतसारों के गीत हमारे तो अपने हैं

भूखे पेटों में कोरे
उपदेशों का पचना
लगता मरघट में तुलसी के
बिरवे का उगना
तनी हुई आँखों के आखर अब छपने हैं

शोषण की गठरी सिरहाने
रखना मुश्किल है
अपने हाथों मिटना अब सब से
भारी छल है
साथ चलें मिलकर अंगारों में तपने हैं

लेकर लाल मशाल खेत-
खलिहानों में जायें
शेष समर की कथा लाल
पोस्टर पर चिपकायें
हँसी चुरानेवाले मोटे हाथ लगे कँपने हैं

◇◇

कहो राम जी

कहो रामजी,कब आये हो

अपना घर-दालान छोड़कर
पोखर-पान-मखान छोड़कर
छानी पर लौकी की लतरें
कोशी—कूल—कमान छोड़कर

नये नये से टुसियाये हो

गाछी - बिरछी को सूनाकर
जौ - जवार का दुख दूना कर
सपनों का शुभ—लाभ जोड़ते
पोथी - पतरा को सगुनाकर
नयी हवा से बतियाये हो

वहीं नहीं अयोध्या केवल
कुछ भी नहीं यहाँ है समतल
दिन पर दिन उगते रहते हैं
आँखों में, मन में सौ जंगल
किस-किस को तुम पतियाते हो
जाओगे तो जान एक दिन
बाजारों के गान एक दिन
फिर - फिर लौटोगे लहरों से
इस इजोत के भाव हैं मलिन
अभी सुबह से सँझियाये हो

◇◇

फाबड़े की धुन

बजी फाबड़े की धुन
ऊसर घाटी में

नाचीं नयी बहू की आँखें
खुलीं हवा-धूप की पाँखें
छलका है उजला प्यार
सहज माटी में

बहा पसीना भीगी अंगिया
जुड़ा कलेजा ठंडी नदिया
है नींद बुनी प्यासी –
शीतलपाटी में

आगों से सुलझा मौसम को
दबा मुट्ठियों में हर गम को
पाँव बँधेंगे नहीं कभी
अब परिपाटी में

◇◇

कहाँ गया बचपन

थके पाँव सा
झुकी छाँव सा
अपना गाँव हुआ
किलकारी वह भरता-हिलता
बचपन कहाँ गया?

चलो जलायें वह अलाव
फूटे कोंपल सी भोर
सिले हुए पेबन्दों पर
भोली ममता के कोर

लुटे दाँव सा
बिना लगाव सा
अपना गाँव हुआ
पानी को ही रहा सुलगता
सपना कहाँ गया?

केले के चिकने पातों से
हम सब हुए बड़े
दलदल पर दीवार थामकर
कब से रहे खड़े

बुझे ताव सा
बिन पड़ाव सा
अपना गाँव हुआ
रोशनियों के लिये सिरजता
सूरज एक नया

◇◇

कामरेड रमेसर की मौत पर

कन्धे पर रख जुआ रमेसर सो गया
फिर बसंत इस बार नकारा हो गया

बड़ी - बड़ी सुर्खी में लगी
निकलने अखबारों में
दुर्घटना की तेज नुकीली
छापे पखवारों में

धुआँ उगलता मौसम सुई चुभो गया
सूरज चोला पहन लड़ाकू हो गया

कोंपल-कोंपल झड़ा किया
मन खेतों की मेड़ों पर
पूरी एक उमर सूखी फिर
निर्वासित घेरों पर

लड़कर जीता हिरन आग का हो गया
आसमान तक बढ़ती फसलें बो गया

◇◇

लोहे की जंजीरें

साथ - साथ टूटेंगे–
लोहे की जंजीरें-
सोने के सिंहासन

भूख आग होती है
आग में सब जलते हैं
उनके सोनजुही छल
उनको ही तो छलते हैं

दोनों ही फूटेंगे–
ये सब झूठे वादे
ये अंधे अनुशासन

एक देह गलती है
पर दो आँखें जलती हैं
गुस्से की कोख में सौ
आँधियाँ पला करती हैं

अब तो सब छूटेंगे -
यह जाली सच्चाई
ये नकली विज्ञापन

अब कसमें खातें हैं
जब भूख नहीं खाते हैं
अपने ऊचे मंसूबे को
लाल किये जाते हैं

अब रुठेंगे - मानेंगे -
रोटी की खातिर इन
बच्चों के हँसते आनन

◇◇

भूख है हथियार

बाढ़ में तो कभी सूखे में दहे तन
इस समय खाली पड़ा है घर

तीन रातों से बराबर खाँसते
बाबू पड़े बीमार कोने
और गठिया - बात से माती
अकेली माँ लगी रोने

तेज ज्वर में तप रही छोटी बहन
हाथ रख पाया न उसके माथ पर

कई सालों से न जो बदली गई
वही साड़ी पहन घरवाली
हुई जाती और उजली देह की
कर न पाती तनिक रखवाली

टोकते हैं इधर मालिक औ' महाजन
काँपती आँखों निहारा हाथ पर

राजमहल सुन्दर कथाओं के
अपने ही घाट खोजते

नावों को बहायें या बांध दें
लहरों वाले तट को ही टोहते

एकजुट होंगे समय के साथ हम
भूख है हथियार जीतेंगे समर

◇◇

लोहों का गीत

हम लोहे लोहों के गीत लिखेंगे
मिहनत को भालों पर स्वयं रचेंगे

बन्द दया की भीख, आज से
बन्धक बेगारी
तोड़ - फोड़कर रख देंगे अब
कमजोरी—लाचारी
खलिहानों - फसलों से गाँव लिखेंगे

ये इतने चुपचाप दीखने वाले
हल के जोड़े
कहते सीना तान नदी उनकी जो
परबत फोड़े
पेट - पीठ से मिले नहीं अब यही लिखेंगे

बैठ रहे कुंडली मारकर जो
इनकी भूखों पर
चाभी के गुच्छे टूटेंगे उनके
झूठ दुखों पर
हम अपने घरबार क्रांति के नाम लिखेंगे

◇◇

सुबह की आँखें

काँपती हैं सुबह की आँखें
सपने भींगते हैं
पेट पर कोड़े उठाये भूख के
दिन बीतते हैं

एक नन्ही हँसी के
धोये हुए चेहरे
बियावान से लगते –
ऊँघते दुपहरे

बन्द मुट्ठी में समय की आँच
को यों भाँपते हैं
मकड़ियों के जाल से अंधे
अँधेरे काटते हैं

लगे हुए पहरे हैं
खेत तक मकानों से
कोयले की आग में
जलते हुए खदानों से

सर्दियों में सर्द हाथों
ताप को ही बाँटते हैं
रोशनी की खबर को दीवार
पर हम साटते हैं

◇◇

रोटी पर नमक

जाने कैसे मेड़ टूटता
बहा खेत का पानी
अपनी ही तकदीर आज
लग रही परायी सी

रोटी पर हो नमक कभी
तो प्याज नहीं मिलता
बथुवा के सागों में पिछला
स्वाद नहीं मिलता

दाने मकई - मटर के जैसे
मुट्ठी से रिसते
मन की अभिलाषा लगती
कमजोर कलाई सी

जब से बाढ़ अकाल हुए
हैं बच्चे डरे हुए
आँखें उड़ती हैं पतंग सी
पहरे कड़े हुए

किस - किसकी कहते
जीती इच्छायें साँसत में
बरस रहे सावन के जल में
दियासलाई सी

श्रम की थकन मिटे कैसे
जब रोटी - दाल नहीं
पूरा घर देने की खातिर
खुशी निहाल नहीं

कैसे कटें पूस की रातें–
बिन कम्बल सहते
हँसी और नींद पसरी है
फटी रजाई सी

◇◇

खेत हमारे हाथ

फसलों को छूकर देखा
ये फसल नहीं आँखें हैं

ये खेत हमारे हाथ,
मेड़ जैसे कि शिराये हैं
चंदनमाटी देह, ये
शुभधन हमने पाये हैं
धूपों की उजली चिड़या
की उड़ी हुई पाँखें हैं

बेटी सी सुन्दर हरियाली
पकड़ उँगलियाँ चलती
सारे आसिन - कातिक को
अगहन ही अगहन करती
डरने लगी भूख आँखों में
जलने लगी सलाखें हैं

सूखा हो या बाढ़ हमारी
पूँजी यही इरादे
खाली पेट और जागी
आँखों को जो सहला दे
हँसी - खुशी ही दीवाली में
खील - पटाखे हैं

◇◇

हसिया हाथ थमे

धीरे--धीरे बहे पसीना
धीरे नदी बह रे
ललना रे आधी रात गये
रनियां का मन कँहरे

इधर गजर का बोल
उधर मुनिया जनमे
ललना रे आँखों नचे सरुप
कि हसिया हाथ थमे
अगुआरे फूले गेन्दा फूल
बीच - बीच अड़हुल रे
ललना रे बेटी का भाग अमोल
बढ़े दो-दो कुल रे

सोते ही हो गयी भोर
कि सपने आधे हुए
ललना रे देख न पाये रूप
कुँवर दम साधे हुए
ढह जाये ऊँची मुंड़ेर
जले यह जंगल रे
ललना रे जाये जहाँ यह राह
मिले अपना कल रे

◇◇

मिहनत की गंगा

सोने थाल गंगाजल पानी
ये सुख अनदेखे हैं
फूटे अलमुनियम के तसले
वाले दिन देखे हैं

पत्ते चुनते दुपहर ढलती
बाग बगीचे में
साँझ गये धुओं के छल्ले
आँत सरीखे हैं

रुखड़े बाल काढ़ते फण
इन भूखों की ऐंठन पर
छाँहों वाले कथा - पुरुष अब
कितने तीखे हैं

देहों के पहाड़ से निकली
मिहनत की गंगा
झूठ - मूठ सुनते थे सच को
जीना सीखे हैं

◇◇

दिन दशहरे के

आ गये फिर दिन दशहरे के

बिन खाये दिन, बिन सोयी रातें
आँख उगीं मिट्टी की सौगातें
ओठ बने कागज ककहरे के

तमक उठी पत्तों की आँखें
आदम खोर नोचते पाँखें
बोल बजते तोतले दुपहरे के

रात का पहाड़ तोड़ सूर्य जले
पसीने की चमक चेहरे भले
झुकते हैं सिर अंधे - बहरे के

◇◇

सोया राजकुंवर

जलता है चंदन वन
राजकुँवर सोया है

संगीनों की नोकें
आँखों में चुभती हैं
गोली - बारूदों से
देहों को धुनती हैं

हाँफ रहा जन-गन-मन
राजकुँवर सोया है

हवा चले, धुआँ उड़े
नदियों के पुल ढहे
परेशान लोग यहाँ
किसको कुछ भी कहे

बन्द हैं अन्तःनयन
राजकुँवर सोया है

सबके सब दीख रहे
व्यस्त यहाँ इन दिनों
करने को याद बहुत
पिछले दिन इन दिनों

अपने में बहुत मगन
राजकुँवर सोया है

◇◇

आग का बीज

सरकारी कोटा का पहने
धारीदार कमीज
खुद को ऐसा लगे कि
जैसे हों गैरों की चीज

ब्लैकबोर्ड - सा टँगा पड़ा
यह मेघभरा आकाश
तुतले हाथों के आखर
तारों के गये पसीज

कई - कई मोर्चों पर लड़ते
हम पथरीले लोग
कर लेती आकार ग्रहण
जैसे भीतर की खीज

काले कौवे खा जाते हैं
छीन हाथ से रोटी
अभी तलक उनको जीने की
आई नहीं तमीज

अपना घर पक्का बनवा
तूफान उड़ाते जो
उनके अगुआरे बोयेंगे
गरम आग का बीज

◇◇

निम्न मध्यवर्ग का गीत

भैया जब घर आता है
तब ऐसा होता है

चिन्ता करते बाबूजी की
खाँसी नहीं दुहरती
बिना दवा खाये माँ
घर में आना - जाना करती
छोटी बहना जान गई
मन कैसा होता है

पिछले भादो में रेहन पर
लगे आम - अमरूद
भैया उन्हें छुड़ाएगा दे
पाई - पाई सूद
मुनुवा कैसे भूले सब कुछ
पैसा होता है

भाभी की पहनी है साड़ी
रंग नहीं छूटे
घर की परिपाटी है—
जीते जी कैसे टूटे

टोले भर में बाँटेगी,
जी, वैसा होता है

◇◇

एक उदास धूप

हवा आजकल कुछ - कुछ
कहती रहती
घर के पिछवारे से
एक सवाल हाँफता दौड़े
आँगन से दालान नापता
एक उदासी बुनी हुई है
जैसे भाई हुआ लापता
थकी हुई कमली भी
सुनती रहती
खबरें हरकारे से
कितना भी धीरे से बोलो
दीवारें सब कुछ सुन लेतीं
खिंची लकीरों में अपने
मन के सारे माने चुन लेतीं
एक नदी उल्टी ही
बहती रहती
जैसे चौबारे से
एक उदास धूप यों पसरी
सपनों ने जैसे पर खोले

पढ़े किताबों में वसन्त सा
लुक - छिप आँखों में कुछ तोले
बचपन की गुड़िया सी
हँसती रहती
पीतल के तारों से

◇◇

खेत बनकर रहे

पेड़ जड़ से ही हवा में खो गये
झंडियों के नाम चिपके रह गये

खेत ही बनकर रहे हम
वे हुए खलिहान
लिखा अपने नाम गेहूँ
और उनके धान
रोटियों के पठारों पर सो गये

था खून तो दौड़ा बहुत
आवाज थी जानी हुई
हम उठे, उठते ही गये
पर राह बेगानी हुई
नगाड़े तो बजे ताली हो गये

सीढ़ियों पर अँधेरों में
आग भड़काती हवा
पँखुड़ी की ताजगी को
सोखता है दबदबा
एक सच की आग फिर से बो गये

◇◇

सुन्दर धरती

जब - जब धरती सुन्दर होगी
आसमान होगा कोमल
तब - तब कोई गीत एक गाने का मन होगा

खूंटे पर रंभाती गायें
देखकर बछड़े दिन को
जैसे तोड़े छान, भगा
ले जाये पहरुओं को
जैसे मन की रंग भावना का गायन होगा

देख नदी को जैसे लहराये
सागर का पानी
झरने भी बन जाते पल में
जैसे औढरदानी
बरसेगा कोई अनहद भीगा सावन होगा

पहला दूध उगे जैसे
धानों की बाली में
और सिद्धन्ता की पौ फूटे
सूरज की लाली में

अपना पहला प्रेम पुतलियों का अंजन होगा

◇◇

चमकी है हसिये की धार

पकने लगी हैं फसलें
दीखते हैं दूर के पहाड़
रे साथी, चमकी है हसिये की धार

बीजों की जगह
पेट-पीठ ही तो बोये हैं
सर्द हाथों को
इस्पातों से हम धोये हैं
रात भर अलावों पर
सिकते हैं सपने सुकुमार
रे साथी, चमकी है हसिये की धार

कथरी की जगह
फटी आँखों को सीना है
अब नहीं साल - साल
गंजी पर जीना है
बैल के गले में भी
लाल कौड़ी का होगा निखार
रे साथी, चमकी है हसिये की धार

पानी की जगह
क्यों पियें हम पसीना
अपने सवालों से
उनको है क्या लेना
हौसले नये हैं
सब कुछ हो जायेगा इस बार
रे साथी, चमकी है हसिये की धार

◇◇

अकाल में बच्चे

सन्नाटे में सीटी बजती
बस कुछ और नहीं
इस अकाल में बच्चे रोते
मुँह में कौर नहीं

जड़ पत्थर से खड़े शहर के
दोनों ओर मकान
यहाँ घरों के नाम खुली है
आदमखोर दूकान
सोख रहे प्रतिफल साँसों को
हम तो और नहीं

कैसे हँसे - हँसाये कोई
सुलग रही हो आग
कन्धों पर सपनों के जूए
बजते आदिम राग
ठण्डे चूल्हे के हाथों को
करते गौर नहीं

सदी यहाँ तक फेंक गयी है
हमको दिखा बताशे
उनके हाथों ढोल कभी तो
बन जाते है तासे
आशीषों से हमें रचे जो
ऐसा दौर नहीं

◇◇

मौसम पूस-माघ के

ओ रे मौसम पूस-माघ के
जब भी आना गाँव में
ढेरों बन्द लिफाफे लाना
शहरों से पंजाब के

सुजनी खाँस रही है माँ की
बहनों की अंगिया मटमैली
सूने खलिहानों की छाया
भाभी की आँखों में फैली

बाबा ने चौपहरा पूजा
रख दी मन में दाब के

खेतों के मेड़ों पर ठहका
करते थे जो आते-जाते
कितने अपने लालकका वे
आँखों से हैं अब बतियाते

सूखा या बाढ़ कहीं कुछ भी
गुल फूलेंगे आदाब के

गाँवों से निकली पगडंडी
मिलने आई दूर शहर से
बरफी पर बरसी मँहगाई
ईद और होली के डर से

धूप-हवा से जीने का मन
अब तो बिना दबाव के

◇◇

छाँहवाले गाँव

फूल पर छिलते रहे जो पाँव
वे किनके हुए?
धूप में जलते रहे जो पाँव
ये किनके हुए?

सुबह जिनकी आँख में
कीचड़ बहाती ही रही
रोशनी का रथ लिये जो
अँधेरा पीती रही

वरगदों की छाँह वाले गाँव
किस दिन के हुए?
आँधियों के दौर वाले ठाँव
हम तिनके हुए!

बरौनियों की लालियों में
रतजगा कोई न था
खुशबुओं की पाँतवाला सुख
सगा कोई न था

गेहुँओं की नोंकवाले दाव
सब टिन के हुए
पसलियों में जमा होते ताव
सब इनके हुए!

◇◇

धार की मछलियाँ

थरथराती टहनियाँ हैं
हिल रहे हैं पेड़

एक चर्चा, एक अंदेशा
बीतते दिन का
और चिड़िया ने सहेजा
एक नया तिनका

धार की ये मछलियाँ हैं
लहर लेती घेर

बूँद जैसे दबी हो भीतर
कहीं इस रेत में
फसल जैसे सूखती हो
भरे सावन खेत में

सूर्यमुख ये फुनगियाँ हैं
रही जल को टेर

दुख हो गये इतने बड़े
हम हो गये छोटे
शहर जाकर गाँव को हम
फिर नहीं लौटे

किसी ने पूछा नहीं है
समय का यह फेर

◇◇

खोज आग की

काश, बता सकता कोई
वह आग कहाँ खोई?

मेड़-मेड़ भटकी थी जो
जंगल-जंगल जलती थी
चौराहों पर बनी तख्तियाँ
सड़कों पर चलती थीं

बीच नदी जैसे सोई!
जो आँख खुली रोई

माँ के आँचल की सबसे
कीमती चीज वह थी
बंजर भी हरा-भरा हो
नायाब बीज वह थी

सरसों हो कल की बोई
हो मिसरी दूध बिलोई

सिर के ऊपर पानी हो
तो खोज आग की होगी
कितना टालेगा मौसम
वह फिर बीच खड़ी होगी

बरसों की आशा जोयी
वह बचा रही जो खोयी

◇◇

नन्हीं उम्मीदें

बर्तन मलते सुबह हुई
ओसार झड़ते दिन
साँझ लपेटे लाली
अपनी छोटी मालकिन

चिड़िया जैसी बाँधती रिबन
अपनी गुड़िया दीदी
धूप कि जैसे भैया ने
मेले में चीज खरीदी
रात आँख में बजती जैसे
बजता खाली टिन

हम जैसे गुलदानों में
लगते कागज के फूल
अपनी तकलीफों के तो
होते हैं और वसूल
दरिया में डाली जाती
अपनी नेकी गिन-गिन

तारों सी बिखरी जातीं
अपनी नन्हीं उम्मीदें
बड़े भाव इस महानगर में
बिकतीं कच्ची नींदें
हम भी पढ़ लेते धूपों के
आखर ये अनगिन

◇◇

अपनी बस्ती में

खाली नहीं हाथ अपने हैं
इनमें चाबी रोशनियों की

भूखे को भूखा रखने का
इन्तजाम हो भले दुगूने
गुजरे हवा धमकियाँ देतीं
बस्ती-बस्ती जंगल बोने
दुखते भले अभी सपने हैं
इनमें कीमत है मणियों की

कागज का दस्तावेज लगा
बँटने फिर से अपनी बस्ती में
इधर तमाशा जादू का औ' उधर
पुलिस निकली गश्ती में
पानी से फिर क्यों कँपने हैं
हस्ती है हीरे की कनियों सी

हमको बहला नहीं सकेंगी
अब इन दिनों कथा परियों की
रोटी होगी अपनी, हाथों–
डोर बँधी होगी चिड़ियों की
ये अग्निकुंड इनमें तपने हैं
यह उजली खुशी धमनियों की

◇◇

रथ चढ़े राजा

सोचते हैं आँख खोले
कमलवाले ताल

वह भी कहता गाँव का
हम भी कहें तो गाँव के
फर्क इतना अर्थ वह
हम शब्द केवल गाँव के
झरी पँखुरियाँ न बोले
अँकुरण का हाल

आयेगी जिस मोड़ पर
चाँदी-मढ़ी वह रोशनी
आँख में उत्सव जगेगा
ये हाथ होंगे आसनी

रथ चढ़े राजा न बोले
हँस रहे चौपाल

सुनाई तो पड़ीं केवल
शंख की ध्वनियाँ
भीड़ थी, मेला लगा फिर
चुप हुई दुनिया

मछलियों ने पँख तोले
काट रेशम जाल

◇◇

आस्था का गीत

नहीं चाहिये आधी रोटी और न जूठा भात
यह खोटी तकदीर एक दिन खायेगी ही मात

हम गरीब मजदूर भले
हम किसान मजबूर भले
पर अपनी लाचारी का अब गीत न गायेंगे
ताकत नई बटोर क्रांति के बीज उगायेंगे

कच्चे गीतों से अच्छा है
नारा एक लिखो
बँधे हुए द्वीपों से बेहतर
धारा एक दिखो
लेकर श्रम का नाम चले
लाल मशालें थाम चले
हाथ-हाथ मिल रोशनियों का तीज मनायेंगे

टुकड़े-टुकड़े जुड़े मगर
पेबन्द नहीं होंगे
जो बादल गरजे भर
वह अनुबंध नहीं होंगे

खाई-खन्दक पाँव तले
कट जायेंगे क्यों न गले
तिलक पसीने का रचकर हम जोत जागायेंगे

अब बहसों को छोड़ें साथी
सोच नयी बदलें
नए सूर्य के स्वागत में
फसलों-से हम झुक लें
जोर-जुल्म अब बहुत खले
आग हथेली पर रख ले
देखें सब दम-खम वैसा संगठन बनायेंगे

◇◇

के गीतों में । गरीबी के तप में झुलसी युवती का सौन्दर्य जैसे बलुआही मिट्टी पहन कर केसर का बाग जल गया हो । समय से संघर्ष करने के क्रम में शान्ति सुमन ने ईश्वर की चोरी न कर, उसके समानांतर, उसके सामने खम ठोक कर खड़े इंसान की जीवंत प्रतिमा गढ़ी है। किसान और मजदूर का श्रम और संघर्ष लिख कर भी वे प्रगतिवादी नहीं बल्कि जनवादी गीतकर्त्री हैं । यानी वे इतिहास दुहराने को नहीं वरन् इतिहास रचने के लिए गीत के क्षेत्र में आईं । इन गीतों में श्रम और पसीने का बहुत ही मर्मस्पर्शी भावन मिलता है । मुड़े हुए नाखून, लहठी-सना पसीना, सड़कों पर दिन की स्याही, आँख में सूखे कुएँ, अलमुनियम के तसलों में उबलते भात, तड़कती हुई पसलियाँ, पाँव भर सीढ़ियाँ चढ़ती थकानें—यें जीवन के यथार्थ को अभिव्यंजित करते हैं । श्रम और जन के घात-प्रतिघात से ये गीत बने हैं । ये गीत भारतीय जीवन की विपत्तियों के ऐशट्रे हैं । हर प्रकार के दुख, हर प्रकार के दर्द, हर तरह के अभाव इन गीतों की भाषा और लय में ढलकर मधुरतम बन गए हैं । यही गीतकर्त्री की रचनात्मकता है । हिन्दी के जनवादी गीतों के बड़े हस्ताक्षरों में एक हैं शान्ति सुमन ।

—डा० विजेन्द्र नारायण सिंह

शान्ति सुमन

मूल नाम : शान्ति लता

जन्म : 15 सितम्बर 1942

जन्म स्थान : कासिमपुर जिला सहर्षा, उत्तर बिहार

शिक्षा : एम. ए., पीएच. डी

कृतियाँ : गीत संग्रह–ओ प्रतीक्षित, परछाई टूटती, सुलगते पसीने, पसीने के रिश्ते, मौसम हुआ कबीर, तप रहे कचनार, भीतर–भीतर आग, मेघ इन्द्रनील (मैथिली), पंख–पंख आसमान (एक सौ एक चुने हुए गीतों का संग्रह)
समय चेतावनी नहीं देता (कविता–संग्रह)

उपन्यास : जल झुका हिरन

आलोचना : मध्यवर्गीय चेतना और हिन्दी का आधुनिक काव्य

सम्पादन : सर्जना, अन्यथा, भारतीय साहित्य, कन्टेम्परारी इन्डियन लिटरेचर (दिल्ली), बीज (पटना), देश की प्रमुख साहित्यक पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित एवं अनेक आकाशवाणी तथा दूरदर्शन केन्द्रों से प्रसारित।
गणतंत्र दिवस की पूर्व संध्या पर सर्वभाषा कवि सम्मेलन (दिल्ली) में तमिल कविता का हिन्दी में अनुवाद–पाठ।

सम्मान एवं पुरस्कार : बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना से साहित्य सेवा सम्मान से सम्मानित एवं पुरस्कृत, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग से कविरत्न सम्मान।
बिहार सरकार के राजभाषा विभाग द्वारा महादेवी वर्मा सम्मान से सम्मानित एवं पुरस्कृत। अर्वतिका (दिल्ली) द्वारा विशिष्ट साहित्य सम्मान, मैथिली साहित्य परिषद से विद्या वाचस्पति का सम्मान, हिन्दी प्रगति समिति द्वारा भारतेन्दु सम्मान, नारी सशक्तीकरण के उपलक्ष्य में सुरगंमा–सम्मान, विंध्य प्रदेश का साहित्य मणि सम्मान आदि।

सम्प्रति : पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, महन्त दर्शनदास महिला महाविद्यालय, मुजफ्फरपुर।

सम्पर्क : ईशान, मीठन पुरा, क्लब रोड (वी. सी गली), रमना, मुजफ्फरपुर–842002

दूरभाष : 0621–2270895 / 9334905530

अभिधा प्रकाशन